Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

नाट्यशास्त्र में सांगीतिक तत्त्व

Dr. Ramshankar

Assistant Professor, Dept. of Music (Vocal), Kashi Hindu University, Varanasi

शोध सार

विद्वानों के मतानुसार तीसरी शताब्दी में भरत के द्वारा नाट्यशास्त्र ग्रंथ की रचना हुई। इस ग्रंथ में नाटक के अंतर्गत आने वाले सभी तत्त्वों (अभिनय, रस, संगीत, दर्शक एवं मंच गृह इत्यादि) का वर्णन वृहद शब्दों में किया गया है। नाट्यशास्त्र में 28 अध्याय से 34 अध्याय तक संगीत की विवेचना की गई है, जिन्हें हम दूसरे शब्दों में "संगीत के तत्त्व" के नाम से परिभाषित कर सकते हैं। इन अध्यायों के अंतर्गत भरतमुनि ने ग्राम, स्वर, लक्षण, गुण–दोष इत्यादि का उल्लेख किया है।

बीज शब्दः स्वर, श्रुति, ग्राम, जाति, ताल, मूर्छना।

भूमिका

नाटक, अभिनय एवं संगीत के संपूर्ण ग्रंथ के रूप में विद्वानों के मतानुसार तीसरी शताब्दी में भरत मुनि के द्वारा प्रमुख ग्रंथ नाट्यशास्त्र रचा गया । इस ग्रंथ का महत्व और सम्मान सभी ग्रंथों (संगीत एवं नाट्य) तथा साक्ष्यों से ऊपर माना जाता है।

भरत के निश्चित काल पर अनेक मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि नाट्य शास्त्र का काल ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी है, तो अनेक के अनुसार भरत चौथी या पाँचवीं शताब्दी में हुए। कई विद्वानों के अनुसार नाट्य शास्त्र के संगीत अध्यायों (28वें से 33वें अध्याय तक) की रचना चौथी शताब्दी में हुई।[1] इनके कई ग्रंथ, नाटक इत्यादि लिखे गए हैं परंतु सबसे प्रमुख और बड़ा ग्रंथ नाट्यशास्त्र ही माना गया है। कुछ मतों में यह कहा जाता है कि इस ग्रंथ को रचने का पूर्ण श्रेय श्री भरत मुनि को जाता और कुछ मतों में यह भी कहा जाता है कि इन्द्रादि देवगणों के द्वारा ब्रह्मा जी से प्रार्थना किए जाने पर ब्रह्मा जी ने इसकी रचना की और भरत मुनि को इसके प्रचार एवं प्रयोग के लिए आदेश दिया।

नाट्य शास्त्र की रचना के लिए चारों वेदों का ध्यान करके उन वेदों के प्रमुख विषयों को लेकर इसकी रचना की गई है तथा इससे संबंधित श्लोक भी प्राप्त होते हैं ।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्, सामभ्यो, गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान्, रसानथर्वणादपि ।।[2]

अर्थात ऋग्वेद से पाठ (कथानक), यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से संगीत एवं अथर्ववेद से रस ग्रहण करके इस ग्रंथ की रचना की गई है।

भरत मुनि ने इस ग्रंथ को 36 अध्यायों में विभक्त किया है जिनके अंतर्गत अलग–अलग विषयों की चर्चा की गई है जिसमें रंगमंच, अभिनय, दर्शक, दर्शक–गृह, रस, संगीत (गीतवाद्यनृत्य) आदि को इन अध्यायों के अंतर्गत बतलाया गया है।

संगीतोपयुक्त अध्याय

28वां अध्याय

इस अध्याय का नाम आतोध–विधान है। यहां पर संगीत के लिए आतोध शब्द इसलिए प्रयुक्त किया गया है क्योंकि उस काल में संगीत शब्द प्रचलित नहीं था। आतोध शब्द पूर्ण रूप से वाद्यों से संबंधित है। इस अध्याय में स्वर, मूर्च्छना तथा गायक–गायिकाओं के बैठने का स्थान इत्यादि का वर्णन है।

29वां अध्याय

इस अध्याय को रस–जाति लक्षण के नाम से जाना जाता है, क्योंकि इसमें रस तथा रस के अनुरूप उनकी जातियों का उल्लेख प्राप्त होता है तथा गीत एवं गीत के प्रकार तथा लक्षण आदि की चर्चा प्राप्त होती है।

30वां अध्याय

इसके अंतर्गत सुषिर (हवा) से बजने वाले वाद्य यंत्रों को रखा गया है।

31वां अध्याय

इस अध्याय को तालाध्याय कहा गया है क्योंकि इस अध्याय में ताल के अंग, लय एवं हस्त संचालन के पांच प्रकारों का वर्णन मिलता है।

32वां अध्याय

इस अध्याय में ध्रुवा से संबंधित बातों का वर्णन किया गया है, जिसके अंतर्गत लक्षण, उनके प्रकार तथा प्रयोग की चर्चा नियमपूर्वक की गई है।

33वां अध्याय

इस अध्याय में संगीत (गायन एवं वादन) के कलाकारों के गुण–दोषों की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

34वां अध्याय

इस अध्याय को पुष्कराध्याय के नाम से जाना जाता है क्योंकि इस अध्याय में चमड़े से बने वाद्यों का वर्णन किया गया है, जिन्हें वर्तमान में अवनद्य वाद्य कहते हैं । इसमें उन वाद्यों की उत्पत्ति, बनावट, प्रकार तथा वादन विधियों का वर्णन प्राप्त होता है।

स्वर एवं श्रुति

भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में संगीत को "नाट्य की शैय्या" कहा है। जिसमें संगीत की व्याख्या पर्याप्त रूप से प्राप्त होती है। इसके अंतर्गत श्रुति, स्वर, मूर्च्छना, जाति, गीति, ताल इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है जिन्हें संगीत के तत्त्व कह सकते हैं। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

स्वर

ध्वनि के दो रूप होते हैं, पहला स्वर तथा दूसरा कोलाहल। वह कोई भी ध्वनि जो एक समान नियमबद्ध हो, कानों को मधुर लगे तथा कर्कश ना हो वह "स्वर" कहलाता है तथा जिसमें माधुर्य ना हो, कर्कश हो एवं अनियमित हो उसे 'कोलाहल' कहते हैं।

सांगीतिक भाषा में कहें तो वह ध्वनि जो संगीतोपयोगी हो, चितरंजक हो तथा मधुर हो उसे नाद कहते हैं।[3] तथा वह प्रत्येक नाद जो संगीतोपयोगी हो स्वर कहलाता है। संगीत में मुख्य 7 स्वर होते हैं – स रे ग म प ध नीं।

श्रुति

संगीत विद्वानों ने ऐसे 22 नाद सुनिश्चित किए हैं, जिन्हें हम श्रुति कहते हैं। इन्हीं 22 श्रुतियों में संगीत के सभी स्वरूप (शुद्ध, कोमल, तीव्र) को व्यवस्थित किया गया है। शुद्ध सात सुरों की श्रुति स्थापना एवं व्यवस्था के लिए कहा गया है –

षड्जश्च ऋषभश्चौव गान्धारो मध्यमस्तथा ।

पञ्चमोधैवतश्चौव सप्तमोऽथ निषादवान् ।।[4]

स्वर ये हैं–षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद। इनके श्रुति व्यवस्था के लिए कहा गया है–

चतुश्चतुश्चतुश्चौव षड्ज मध्यम पंचमः

द्वेवेनिषाद गंधारौ तिस्त्री ऋषभ धैवत ।।[5]

अर्थात सा म प की चार–चार, रे ध की तीन–तीन तथा ग और नि की दो–दो श्रुतियां निर्धारित की गई हैं –

22 श्रुतियों के नाम तथा उनके अंतर्गत स्वरों की स्थापना –[6]

क्रम	श्रुतियों के नाम	स्वर स्थापना
1	तीव्रा	सा
2	कुमुदवती	
3	मंदा	रे
4	छंदोवती	
5	दयावती	रे (तीव्र)
6	रंजनी	
7	रक्तिका	ग–
8	रौद्री	ग (तीव्र)
9	क्रोधा	
10	वज्रिका	म कोमल

11	प्रसारिणी	म (तीव्र)
12	प्रीति	
13	मार्जनी	
14	क्षिति	प अचल
15	रक्ता	ध कोमल
16	संदीपिनी	
17	आलापिनी	
18	मदंती	ध (तीव्र)
19	रोहणी	
20	रम्या	नी कोमल
21	उग्रा	नी (तीव्र)
22	क्षोभिणी	

जाति गायन

प्राचीन काल में जिस विशेष प्रकार का गायन होता था उसे "जाति गायन" कहते थे। वर्तमान में जो 'राग' शब्द प्रचलित है उसे हम 'जाति' कहते थे और "जाति ही राग की जननी है।" जाति का शाब्दिक अर्थ ही होता है किसी विशेष समुदाय को पारिभाषित करना या चिन्हित करना है। जाति की दृष्टि से नाट्यशास्त्र में 10 प्रकार के लक्षण बताये गए है।

1. ग्रह 2. अंश 3. तार 4. मन्द्र 5. न्यास

6. अपन्यास 7. अल्पत्व 8. बहुत्त्व 9. औडव 10. षाड़व

नाट्यशास्त्र में उल्लेखित उपर्युक्त लक्षण परिवर्तित होकर वर्तमान में रागों के लक्षण माने गए हैं।

गीत

स्वरों का वह समूह जो मनोरंजक हो गीत कहलाता है। इस के दो भेद होते हैं–

- गांधर्व
- गान

गांधर्व

जो गीत गंधर्वो द्वारा गाया जाए वह गंधर्व गीत कहलाता है।

गान

जो संगीत विद्वानों (वग्गेयकारों) के द्वारा रचित हो वह गान गीत कहलाता है। गान गीत के 2 प्रकार होते हैं –

- निबद्ध
- अनिबद्ध

ग्राम

स्वरों का वह स्वरूप जिसमें श्रुति समूह एक निश्चित क्रम के अनुरूप व्यवस्थित हो ग्राम कहलाता है। संगीत में ग्राम का अर्थ होता है– "7 स्वरों का समूह"। जिस प्रकार एक शिक्षित, आदर्श तथा स्वस्थ मनुष्य में खान–पान रहन–सहन इत्यादि का एक निश्चित एवं व्यवस्थित क्रम होता है उसी प्रकार ग्राम में भी स्वरों का एक निश्चित क्रम रखा जाता है। नाट्य शास्त्र के अंतर्गत भरत ने ग्राम के दो प्रकार (षडज–मध्यम) माने हैं । और मध्य काल से वर्तमान तक प्रचलित गांधार ग्राम को अपनी कृति में न ही स्थान दिया है और ना ही स्वीकारा है।

मूर्च्छना

इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम भरत ने ही अपनी कृति नाट्यशास्त्र में किया है। उन्होंने बताया कि सात स्वरों का क्रम अनुसार आरोह–अवरोह के व्यवस्थित क्रम को मूर्च्छना कहते हैं ।

> क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
>
> मूर्च्छनेत्युच्यते, ग्रामद्वये ताः सप्त सप्त च ।।[8]

भरत ने नाट्यशास्त्र में चार प्रकार की मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया है तथा उल्लेखित दोनों ग्रामों (षडज व मध्यम) की 7–7 मूर्च्छना बताई हैं ।

मूर्च्छना के प्रकार–

1) शुद्ध मूर्च्छना
2) षाड़व मूर्च्छना
3) औड़व मूर्च्छना
4) साधारणकृत मूर्च्छना

इन चारों मूर्छनाओं के प्रकारों से मध्यम एवं षड्ज की 7–7 मूर्च्छनाएं प्राप्त होती हैं जो निम्न हैं–

षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाएँ–

(1) उत्तर मन्द्रा
(2) रजनी
(3) उत्तरायता
(4) शुद्ध षड्जा
(5) मत्सरीकृता

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

(6) अश्वकान्ता

(7) अभिरुद्रगता

मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएँ–

(1) सौवोरी

(2) हरिणाश्वा

(3) कलोपनता

(4) शुद्ध मध्या

(5) मार्गी

(6) पौरवी

(7) हृण्यका

ताल

भारतीय संगीत में ताल परंपरा अत्यधिक प्राचीन है। इसका उल्लेख सामवेद, रामायण काल तथा महाभारत काल इत्यादि से प्राप्त होता आया है। सामवेद में ताल की प्रक्रिया के लिए हाथों की उंगलियों पर स्वरों के बीच का अंतर दिखाकर ताल प्रयोग में लाई जाती थी ।

नाट्यशास्त्र के 31वें अध्याय में ताल को रखा गया है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकारों की तालों उनकी मात्राओं तथा उनके प्रकारों का वर्णन प्राप्त होता है।

भरत ने ताल के दो प्रकारों का वर्णन किया है–

चतुरश्रस्तथा त्र्यश्र इति तालो द्विघा मतः ।

चच्यत्पुटश्चाचपुट इति नाम्नी तयोः क्रमात ।।[9]

ताल के दो प्रकार हैं–

1 चतुरश्र 2 त्र्यश्र

चतुरश्र का अर्थ है चार कोनों वाला और इसी प्रकार त्र्यश्र का अर्थ है तीन कोनों वाला। चूँकि चार अंक सम और तीन अंक विषम है इसीलिए जिस भाग में चार पद हों, उसे हम चतुरश्र और जिसमें तीन पद हों, उसे त्यश्र कहेंगे ।

मार्गी संगीत के अंतर्गत भरत ने पांच प्रकार की मार्गी तालें भी मानी हैं।

1 चच्चत्पुट, 2 चाचपुट,

3 षट्पितापुत्रक 4 संपक्वेषटक (संपेष्टक)

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 01, June 2021
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org
© The Author(s) 2021
UGC CARE listed Journal

5 उद्धृत ।

निष्कर्ष

नाट्यशास्त्र संगीत के सभी ग्रंथों, शब्दों, परिभाषाओं इत्यादिओं का आधार है एवं इसके अंतर्गत उल्लेखित संगीत सम्बंधित विभिन्न तत्त्वों को भरत ने अपने समय के अनुरूप परिभाषित किया है जो कि वर्तमान संगीत के विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन के लिए अत्यंत उपयोगी है।

सन्दर्भ

1 सेन, डॉ. अरुण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल ,सन 1973, पृ.सं. 289
2 मिश्र, डॉ. बृजवल्लभ, नाट्यशास्त्र, सिद्धार्थ पब्लिकेशन, दिल्ली 1997 पृ. 70
3 वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, 2007. पृ. 33
4 मिश्र, डॉ. बृजवल्लभ, नाट्यशास्त्र, सिद्धार्थ पब्लिकेशन, दिल्ली 1997 पृ. 70
5 वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, 2007. पृ. 33
6 वसंत. संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, 2015. पृ. 42
7 शर्मा, प्रो. स्वतंत्र. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिशिंग हाऊस , इलाहाबाद 2014
8 चौधरी, सुभद्रा, संगीत रत्नाकर, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 96.
9 शर्मा, प्रो. स्वतंत्र. भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद 2014. पृ. 35